

International Journal of Humanities and Education Research

ISSN Print: 2664-9799
ISSN Online: 2664-9802
IJHER 2025; 7(2): 368-373
www.humanitiesjournal.net
Received: 19-07-2025
Accepted: 25-08-2025

धीरज प्रताप मित्र

शोधछात्र, समाजशास्त्र विभाग, काशी
हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर
प्रदेश, भारत

भारतीय समाज में विवाह, परिवार एवं स्नेह का अलगाव: परंपरा, आधुनिकता तथा भावनात्मक संकट

धीरज प्रताप मित्र

DOI: <https://www.doi.org/10.33545/26649799.2025.v7.i2e.281>

सारांश

प्रस्तुत आलेख भारतीय समाज में विवाह, परिवार एवं स्नेह के अलगाव की जटिलताओं का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण का प्रयत्न करता है। भारतीय परंपरा में विवाह केवल व्यक्तिगत अथवा दांपत्य संबंध मात्र नहीं अपितु सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था का मूल आधार रहा है। संयुक्त परिवार व्यवस्था, पारस्परिक सहयोग तथा सामूहिकता ने लंबे समय तक स्नेह एवं आत्मीयता को स्थिर बनाए रखा किन्तु आधुनिकता, शहरीकरण, औद्योगीकरण, व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद कि बढ़ती प्रवृत्तियों ने पारिवारिक संरचनाओं में गहरा परिवर्तन उत्पन्न किया। एकल परिवार की बढ़ती प्रवृत्ति, प्रेम विवाह एवं वैवाहिक स्वायत्तता की मांग ने पारंपरिक मानदंडों को चुनौती दी है। इस सबके अतिरिक्त डिजिटल युग और सोशल मीडिया ने रिश्तों को आभासी तथा अस्थायी बना दिया है, जिससे विवाहेतर संबंध (extramarital affairs) जैसी प्रवृत्तियों में वृद्धि हुई है। इस लेख में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि स्नेह का अलगाव केवल व्यक्तिगत या मनोवैज्ञानिक समस्या नहीं है बल्कि यह सामाजिक संरचनाओं के विघटन के साथ ही भावनात्मक विश्वास की कमजोरी का भी द्योतक है। वर्तमान में बढ़ती तलाक, पारिवारिक अस्थिरता, वृद्धों की उपेक्षा और युवाओं में रिश्तों के प्रति असुरक्षा आदि इसके प्रत्यक्ष परिणाम हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से दुर्खीम की Anomie, मार्क्स की Alienation, वेबर की Rationalization, फ्रॉम की The Art of Loving, गिडेन्स की Pure Relationship एवं बॉमन की Liquid Love जैसी अवधारणाएँ इस संकट की सैद्धांतिक व्याख्या करती हैं। अंततः प्रस्तुत आलेख यह निष्कर्ष निकालता है कि विवाह एवं परिवार के पुनर्परिभाषण तथा संवाद, शिक्षा और सांस्कृतिक मूल्यों के संतुलन द्वारा ही भावनात्मक संकट का समाधान संभव है।

कूटशब्द : विवाह, परिवार, स्नेह का अलगाव, आधुनिकता, विवाहेतर संबंध, भावनात्मक संकट, समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

प्रस्तावना

भारतीय समाज में विवाह, परिवार एवं स्नेह का अलगाव एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है क्योंकि यह न केवल व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करता है अपितु व्यापक सामाजिक संरचना तथा सांस्कृतिक निरंतरता पर भी गहरी छाप छोड़ता है। विवाह एवं परिवार भारतीय सामाजिक जीवन के प्रमुख स्तंभ रहे हैं जिन्हें केवल जैविक अथवा दांपत्य संस्था नहीं बल्कि सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक व्यवस्था का केंद्र माना गया है। परंपरागत भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था ने पीढ़ियों तक सहयोग, सामूहिकता एवं स्नेह को संरक्षित किया जहाँ आत्मीयता और विश्वास जीवन का आधार माने जाते थे किन्तु औद्योगीकरण, शहरीकरण, शिक्षा का प्रसार एवं महिलाओं की बदलती सामाजिक भूमिकाओं आदि ने इन परंपरागत संरचनाओं में गहरा परिवर्तन उत्पन्न किया है (बेक एवं बेक-गर्न्सहाइम, 2002)। आधुनिकता ने एकल परिवार की ओर संक्रमण, वैवाहिक स्वायत्तता के साथ ही प्रेम विवाह की बढ़ती प्रवृत्ति को जन्म दिया जिससे पारंपरिक मानदंडों तथा आधुनिक जीवनशैली के बीच तीव्र टकराव दिखाई देता है। इसके साथ ही व्यक्तिवाद-उपभोक्तावाद की बढ़ती प्रवृत्तियों ने स्नेह एवं आत्मीयता के बंधनों को कमजोर किया है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से 'स्नेह का अलगाव' को इस तरह परिभाषित किया जा सकता है कि यह वह स्थिति है जहाँ विवाह तथा परिवार जैसी सामाजिक संस्थाओं के भीतर आत्मीयता, विश्वास एवं भावनात्मक एकता धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है। दुर्खीम (1897/1951) के Anomie सिद्धांत ने यह स्पष्ट किया था कि जब समाज में साझा नैतिक ढाँचा कमजोर पड़ता है तो व्यक्ति दिशाहीन एवं असुरक्षित अनुभव करता है। ठीक इसी प्रकार कि स्थिति वैवाहिक जीवन में भी दिखाई देती है जब पारिवारिक-सामाजिक मानदंड कमजोर होने लगते हैं। मार्क्स (1844/1978) की Alienation की अवधारणा भी यह दर्शाती है कि पूँजीवादी समाज में न केवल श्रम अपितु मानवीय रिश्ते भी वस्तुकरण की प्रक्रिया से गुजरते हैं जिससे व्यक्ति अपने भावनात्मक जीवन से भी धीरे-धीरे अजनबी होता जाता है। इस विषयक वेबर (1922/1978) की Rationalization तथा Disenchantment की अवधारणाएँ यह इंगित करती हैं कि वर्तमान आधुनिक जीवन की औपचारिकता एवं अनुशासन रिश्तों की सहजता और आत्मीयता को समाप्त कर देते हैं। इसी कड़ी में फ्रॉम (1956) की The Art of Loving यह बताती है कि उपभोक्तावादी संस्कृति में प्रेम एवं स्नेह भी एक वस्तु की तरह ही खरीदे-बेचे जाने लगे हैं।

Corresponding Author:

धीरज प्रताप मित्र

शोधछात्र, समाजशास्त्र विभाग, काशी
हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर
प्रदेश, भारत

गिडेन्स (1992) की Pure Relationship तथा बॉमन (2003) की Liquid Love जैसी अवधारणाएँ आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता में रिश्तों की नाजुकता-अस्थिरता को स्पष्ट करती हैं। इन सैद्धांतिक दृष्टिकोणों के आलोक में प्रस्तुत लेख यह प्रश्न उठाता है कि विवाह तथा परिवार में स्नेह का अलगाव क्यों बढ़ रहा है साथ ही इसका भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। क्या यह केवल परंपरा एवं आधुनिकता के बीच का टकराव है अथवा यह व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों का परिणाम है? विवाहेतर संबंध (extramarital affairs) भी इसी विमर्श का हिस्सा हैं क्योंकि ये रिश्तों में विश्वास और भावनात्मक स्थिरता के संकट को गहरा कर देते हैं। विवाहेतर संबंध केवल व्यक्तिगत नैतिकता का प्रश्न नहीं अपितु सामाजिक ढाँचे में आए बदलाव का भी प्रतीक हैं, जहाँ डिजिटल संस्कृति, आभासी संबंध एवं उपभोक्तावादी जीवनशैली रिश्तों की गहराई को कम कर रहे हैं। परिणामतः तलाक, दांपत्य असुरक्षा, वृद्धों की उपेक्षा तथा युवाओं में रिश्तों के प्रति अनिश्चितता जैसे सामाजिक संकट उभर रहे हैं। इस आलेख का उद्देश्य इसी जटिलता को समझना है जिसमें परंपरा और आधुनिकता के बीच द्वंद्व, स्नेह का अलगाव तथा भावनात्मक संकट की प्रक्रिया का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा।

समाजशास्त्रीय सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

विवाह, परिवार तथा स्नेह के अलगाव को समझने हेतु समाजशास्त्रीय सिद्धांतों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि ये न केवल आधुनिकता एवं इस कारण घटित सामाजिक परिवर्तन की जड़ों की पहचान करते हैं अपितु भावनात्मक संकट की संरचनात्मक व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं। एमिल दुर्खीम (1897/1951) की Anomie की अवधारणा इस संदर्भ में बुनियादी है; उन्होंने अपने अध्ययन के माध्यम से दिखाया कि जब समाज में साझा मानदंड तथा सामूहिक चेतना कमजोर हो जाती है तो व्यक्ति दिशाहीन और असुरक्षित हो जाता है जिसका सीधा असर विवाह एवं परिवार पर पड़ता है। वर्तमान में तलाक, अलगाव, दांपत्य जीवन में बढ़ती अस्थिरता आदि इसी anomie स्थिति के द्योतक हैं जहाँ परंपरागत नैतिक नियंत्रण कमजोर हो गया है तथा रिश्तों का आधार अस्थिर हो गया है। कार्ल मार्क्स (1844/1978) ने Alienation की अवधारणा में पूँजीवाद के प्रभावों को समझाते हुए बताया कि व्यक्ति अपने श्रम से, स्वयं से एवं दूसरों से अलग-थलग हो जाता है। आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था में यही अलगाव भावनात्मक जीवन तक फैल गया है जहाँ रिश्ते भी वस्तुकरण (commodification) का शिकार हो रहे हैं एवं प्रेम तथा आत्मीयता को भी उपभोग्य वस्तु की तरह देखा जाने लगा है। मैक्स वेबर का Rationalization का सिद्धांत इस विषयक यह स्पष्ट करता है कि आधुनिक समाज की नौकरशाही तथा औपचारिकता रिश्तों की सहजता को समाप्त कर देती है जिससे भावनात्मक बंधन अधिक औपचारिक, गणनात्मक होने के साथ ही अस्थिर भी हो जाते हैं। वेबर के अनुसार यह disenchantment भावनात्मक आत्मीयता को कमजोर करता है और रिश्तों को साधनात्मक बना देता है। एरिख फ्रॉम (1956) ने The Art of Loving में इस बात पर जोर दिया कि प्रेम एक कला है जिसे देखभाल, जिम्मेदारी, सम्मान तथा ज्ञान के आधार पर विकसित किया जा सकता है किन्तु आधुनिक पूँजीवादी संस्कृति ने प्रेम को भी बाजार में बेची जाने वाली वस्तु में बदल दिया है। उन्होंने Escape from Freedom (1941) में यह तर्क दिया कि आधुनिक व्यक्ति स्वतंत्रता के बोझ से बचने हेतु सतही रिश्तों और उपभोक्तावादी प्रेम की ओर भागता है जो स्नेह के अलगाव को और गहराता है। एंथनी गिडेन्स (1992) की Pure Relationship की अवधारणा स्नेह के अलगाव को समझने में महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके अनुसार विलंबित आधुनिक समाज में रिश्ते केवल तभी टिके रहते हैं जब वे भावनात्मक संतुष्टि प्रदान करते हैं अर्थात् ये रिश्ते सशर्त, अस्थायी एवं निरंतर बातचीत पर आधारित होते हैं। यह वैवाहिक स्वायत्तता तथा प्रेम विवाह की प्रवृत्ति से जुड़ा है जहाँ रिश्तों की स्थिरता केवल भावनात्मक पूर्ति पर निर्भर करती है। ज़िगमंड बॉमन (2003) ने अपने Liquid Love की अवधारणा में इस विचार को और आगे बढ़ाते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि उपभोक्तावादी एवं वैश्वीकृत आधुनिकता ने रिश्तों को तरल बना दिया है जो आसानी से बनते हैं और टूटते हैं। उनके अनुसार

आधुनिक रिश्तों की यह तरलता उन्हें अत्यधिक अस्थिर एवं असुरक्षित बनाती है जिससे भावनात्मक संकट तथा स्नेह का अलगाव बढ़ता है। बॉमन का यह दृष्टिकोण डिजिटल युग में और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है जहाँ सोशल मीडिया तथा ऑनलाइन प्लेटफॉर्म रिश्तों को एक क्लिक में जोड़ते एवं समाप्त करते हैं (बॉमन, 2007)। इस तरह दुर्खीम से बॉमन तक का सैद्धांतिक विकास यह दिखाता है कि आधुनिकता के प्रत्येक चरण में रिश्तों की आत्मीयता सतत रूप से कमजोर होती गई और स्नेह का अलगाव एक गहरी सामाजिक प्रक्रिया के रूप में उभरता गया। भारतीय समाजशास्त्रियों ने भी विवाह, परिवार तथा स्नेह के अलगाव पर गहन चिंतन किया है। एम.एन. श्रीनिवास (1966) ने संस्कृतिकरण तथा पश्चिमीकरण की प्रक्रियाओं का विश्लेषण करते हुए दिखाया कि भारतीय परिवार एवं विवाह संस्थाएँ धीरे-धीरे पारंपरिक नियंत्रण से मुक्त होकर नए प्रकार की स्वायत्तता की ओर बढ़ रही हैं। उन्होंने अपने अध्ययन के माध्यम से यह भी इंगित किया कि जाति एवं परिवार का गहरा संबंध विवाह चयन को नियंत्रित करता है किन्तु आधुनिकता इस ढाँचे को चुनौती दे रही है। आंद्रे बेते (1965) ने विवाह और परिवार को सामाजिक स्त्रीकरण की दृष्टि से देखते हुए बताया कि ये संस्थाएँ आत्मीयता का स्थल मात्र नहीं अपितु असमानता तथा शक्ति संबंधों की पुनरुत्पत्ति करती हैं। कर्वे (1965) ने भारतीय परिवार की विविधताओं को समझाते हुए यह स्पष्ट किया कि संयुक्त परिवार ने भारतीय समाज को विशिष्टता तो प्रदान की परंतु आधुनिकता इसे धीरे-धीरे विघटित कर रही है। ए.एम. शाह (1998) ने परिवार पर लिखे अपने आलोचनात्मक निबंधों में यह दिखाया कि भारतीय परिवार केवल परंपरा एवं धार्मिकता पर आधारित नहीं बल्कि समय-परिस्थितियों के अनुसार बदलने वाली संस्था है जिसमें विवाहेतर संबंधों तथा वैवाहिक अस्थिरता की समस्याएँ आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उभरकर सामने आ रही हैं। इस प्रकार भारतीय समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण यह रेखांकित करता है कि स्नेह का अलगाव भारत में केवल पश्चिम से आयातित परिघटना नहीं अपितु भारतीय सामाजिक संरचनाओं तथा सांस्कृतिक संक्रमण का भी परिणाम है। अतः यह स्पष्ट है कि स्नेह के अलगाव एवं भावनात्मक संकट की व्याख्या हेतु समाजशास्त्रीय सिद्धांत एक सुसंगत ढाँचा प्रदान करते हैं। दुर्खीम की Anomie सामाजिक नियंत्रण के टूटने को, मार्क्स की Alienation पूँजीवादी वस्तुकरण को, वेबर की Rationalization औपचारिकता तथा मोहभंग को, फ्रॉम की The Art of Loving प्रेम के बाजारकरण को, गिडेन्स की Pure Relationship रिश्तों की सशर्तता को एवं बॉमन की Liquid Love आधुनिक रिश्तों की अस्थिरता को स्पष्ट करती है तो वहीं भारतीय समाजशास्त्रियों ने इन प्रवृत्तियों को भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में जोड़ते हुए यह दिखाया कि विवाह-परिवार में स्नेह का अलगाव परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व का परिणाम है। इस तरह यह सैद्धांतिक विमर्श हमें यह समझने में मदद करता है कि विवाह, परिवार एवं आत्मीयता का भविष्य किस दिशा में अग्रसर है और भावनात्मक संकट किस प्रकार सामाजिक संरचनाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है।

परंपरागत भारतीय विवाह तथा परिवार की संरचना

भारतीय समाज की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक जड़ें विवाह एवं परिवार की संस्थाओं में गहराई से निहित हैं जहाँ संयुक्त परिवार प्रणाली को लंबे समय तक सामाजिक जीवन का आदर्श मॉडल माना गया है। संयुक्त परिवार एक निवास इकाई मात्र नहीं अपितु स्नेह, सहयोग के साथ ही सामूहिकता का वह जटिल ढाँचा था जिसने पीढ़ियों तक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा, सांस्कृतिक निरंतरता तथा आर्थिक स्थिरता प्रदान की (कर्वे, 1965)। इस व्यवस्था में व्यक्तिगत पहचान सामूहिक हितों से गुंथी हुई थी तथा रिश्तों का ताना-बाना केवल जैविक अथवा आर्थिक आधार पर नहीं अपितु भावनात्मक आत्मीयता और नैतिक दायित्वों पर आधारित था। बच्चों की देखभाल, वृद्धों का सम्मान, आर्थिक संसाधनों का साझा उपयोग आदि इस प्रणाली के केंद्रीय तत्व थे जिसने परिवार को समाजीकरण, मूल्य-निर्माण, भावनात्मक सहारा देने आदि की प्राथमिक संस्था बनाया। विवाह संस्था इस ढाँचे का दूसरा प्रमुख स्तंभ रही जिसे केवल दांपत्य संबंध की मान्यता नहीं अपितु धार्मिक-सांस्कृतिक संस्कार माना गया। हिंदू धर्म में विवाह को संस्कार के

रूप में परिभाषित किया गया है जहाँ यह न केवल दो व्यक्तियों का मिलन है बल्कि दो परिवारों एवं पीढ़ियों के बीच सामाजिक-आध्यात्मिक बंधन स्थापित करता है। भारतीय विवाह पद्धति में धर्मशास्त्र एवं परंपरागत ग्रंथों ने वैवाहिक जीवन को धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक कर्तव्यों से जोड़ा है जिससे विवाह को व्यक्तिगत सुख से अधिक सामाजिक-धार्मिक दायित्व के रूप में देखा गया। यही कारण है कि विवाह का टूटना यथा तलाक या अलगाव ऐतिहासिक रूप से भारतीय समाज में अस्वीकार्य एवं सामाजिक अपमान का कारण माना जाता रहा (उबेरोई, 2006)। परंपरागत विवाह, परिवार संरचना पर जाति-धर्म का गहरा प्रभाव रहा है। जाति व्यवस्था ने न केवल विवाह हेतु साथी चयन को नियंत्रित किया अपितु परिवार के भीतर संबंधों और भूमिकाओं को भी परिभाषित किया। *एंडोगैमी* और *एक्सोगैमी* जैसे नियमों ने यह सुनिश्चित किया कि विवाह जातिगत सीमाओं के साथ ही धार्मिक आस्थाओं के भीतर ही संपन्न हो जिससे सामाजिक व्यवस्था तथा समूह पहचान सुरक्षित रहे (ड्युमो, 1980)। धर्म ने विवाह को केवल लौकिक अनुबंध नहीं बल्कि धार्मिक दायित्व के रूप में परिभाषित किया जिससे विवाह की स्थिरता एवं पवित्रता को समाज में सर्वोच्च महत्व प्राप्त हुआ। मुस्लिम, ईसाई तथा अन्य धार्मिक समुदायों में भी विवाह को धार्मिक संस्कार अथवा अनुबंध के रूप में समझा गया यद्यपि कि इनके स्वरूप एवं अनुष्ठानों में विविधता रही (अहमद, 1976)। सामाजिक मूल्यों ने इन व्यवस्थाओं को सुदृढ़ किया जहाँ परिवार को व्यक्तिगत स्वार्थ पर नियंत्रण रखने के साथ ही सामूहिकता को प्राथमिकता देने वाली संस्था माना गया। परंपरागत भारतीय परिवार भावनात्मक बंधनों का भी गढ़ रहा है जहाँ रिश्ते केवल कार्यात्मक नहीं अपितु गहरी आत्मीयता और स्नेह पर आधारित थे। भाई-भाई, माता-पिता और संतान, पति-पत्नी तथा दादा-पोते के बीच भावनात्मक जुड़ाव ने परिवार को एक सजीव इकाई बनाया जिसे भारतीय सभ्यता की धरोहर के रूप में देखा जाता है (कपाड़िया, 1958)। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखें तो कई विद्वानों ने भारतीय विवाह तथा परिवार की विशेषताओं का अध्ययन किया है। एम.एन. श्रीनिवास (1966) ने अपने कार्यों में यह दिखाया कि किस तरह 'संस्कृतिकरण' तथा 'आधुनिकीकरण' की प्रक्रियाएँ विवाह और परिवार की परंपरागत संरचनाओं को प्रभावित करती हैं। उनके अनुसार भारतीय समाज में जाति एवं परिवार के बीच गहरा अंतर्संबंध है जिसने विवाह संबंधों को नियंत्रित किया साथ ही परिवार को सामाजिक असमानताओं को बनाए रखने का उपकरण भी बनाया। आंद्रे बेते (1965) ने परिवार-विवाह को सामाजिक स्तरीकरण तथा शक्ति संबंधों की दृष्टि से विश्लेषित करते हुए यह कहा कि परिवार केवल आत्मीयता का स्थल नहीं अपितु असमानता और पदानुक्रम को भी पुनरुत्पादित करता है। वहीं कर्वे ने भारतीय परिवार की विविधताओं को रेखांकित करते हुए संयुक्त परिवार को एक अनूठी सामाजिक संस्था बताया जिसने भारतीय समाज को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया। उनके अनुसार परिवार जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र नहीं बल्कि सांस्कृतिक निरंतरता का वाहक भी रहा है। आई.पी. देसाई (1964) और आई.पी. शाह (1998) जैसे विद्वानों ने विवाह-परिवार को बदलते सामाजिक संदर्भ में समझते हुए यह दर्शाया कि परंपरागत संयुक्त परिवार प्रणाली समय के साथ कार्यात्मक परिवर्तन का अनुभव कर रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से विवाह-परिवार में भावनात्मक बंधन का महत्व विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। परिवार को केवल आर्थिक सहयोग का केंद्र नहीं अपितु प्रेम, आत्मीयता, सुरक्षा प्राप्ति आदि का स्थान माना गया, जहाँ व्यक्ति अपनी पहचान एवं अस्तित्व का अनुभव करता था। यह भावनात्मक जुड़ाव परिवार के सदस्यों के बीच परस्पर सहयोग और कर्तव्यों को मजबूत करता था। विवाह भी केवल सामाजिक अनुबंध नहीं था बल्कि जीवन के सभी सुख-दुःख को साझा करने वाला संबंध था जो धर्म एवं समाज द्वारा पवित्र और अटूट माना जाता था। परंपरा में विवाह और परिवार की स्थिरता ने समाज को भावनात्मक सुरक्षा तथा सामाजिक निरंतरता प्रदान की जिससे स्नेह और आत्मीयता सामाजिक जीवन का आधार बन सके। अतः यह स्पष्ट होता है कि परंपरागत भारतीय विवाह तथा परिवार केवल सामाजिक संस्थाएँ नहीं अपितु भावनात्मक-सांस्कृतिक जीवन का केंद्र रहे हैं। संयुक्त परिवार प्रणाली ने सामूहिकता, सहयोग एवं स्नेह को स्थिर किया; विवाह ने सामाजिक-धार्मिक

मूल्यों को पुष्ट किया; जाति तथा धर्म ने इन संस्थाओं को नियंत्रित और संरक्षित किया; इस सबके आलावा भावनात्मक बंधनों ने इन्हें सजीव और टिकाऊ बनाए रखा। भारतीय समाजशास्त्रियों यथा श्रीनिवास, बेते, कर्वे और शाह ने यह दिखाया कि भारतीय विवाह और परिवार की जटिलताएँ सामाजिक परिवर्तन, शक्ति संबंध तथा सांस्कृतिक निरंतरता के संदर्भ में समझी जानी चाहिए। यही परंपरागत ढाँचा आगे चलकर आधुनिकता एवं सामाजिक परिवर्तन की चुनौतियों से टकराकर स्नेह के अलगाव और भावनात्मक संकट की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

आधुनिकता तथा सामाजिक परिवर्तन

भारतीय समाज में आधुनिकता का प्रवेश औद्योगीकरण, शहरीकरण, वैश्वीकरण एवं शिक्षा के प्रसार के साथ हुआ जिसने विवाह-परिवार जैसी परंपरागत संस्थाओं को गहनता से प्रभावित किया। औद्योगीकरण ने न केवल उत्पादन प्रणाली को बदला अपितु रोजगार के नए अवसर तथा नए नगरीय केंद्रों का विकास किया जिसके कारण लोग गाँव और संयुक्त परिवार से कटकर शहरों में छोटी इकाइयों में बसने लगे परिणामतः पारिवारिक संरचना में विघटन हुआ तथा संयुक्त परिवार की जगह एकल परिवार प्रणाली ने मजबूती पाई (शाह, 1998)। इसी तरह शहरीकरण ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया जिससे पारिवारिक नियंत्रण एवं जातीय परंपराओं का असर कमजोर हुआ और विवाह तथा पारिवारिक संबंध अधिक लचीले और व्यक्तिगत स्तर पर निर्णय लेने योग्य बने। शिक्षा के विस्तार ने विशेष रूप से महिलाओं हेतु नई संभावनाएँ खोलीं; उच्च शिक्षा-रोजगार के अवसरों ने महिलाओं को न केवल आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाया अपितु आपसी संबंधों में भी उनकी भूमिका को पुनर्परिभाषित किया। महिलाएँ अब केवल गृहिणी तक सीमित न रहकर पारिवारिक मामलों में निर्णय लेने, आर्थिक योगदान देने के साथ ही वैवाहिक जीवन की शर्तों को चुनौती देने में सक्षम हुईं (उबेरोई, 2006)। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं में परिवर्तन हुआ तथा पति-पत्नी के बीच संबंध अधिक साझेदारी पर आधारित होने लगे। आधुनिकता ने विवाह संस्था में भी गहरा परिवर्तन किया। वर्तमान में प्रेम विवाह एवं अंतर्जातीय विवाह की बढ़ती प्रवृत्ति ने जाति-धर्म आधारित परंपरागत विवाह नियमों को चुनौती दी है जिससे वैवाहिक स्वायत्तता की नई अवधारणा उभरकर सामने आई। आज युवा वर्ग अपने जीवन साथी के चयन में व्यक्तिगत पसंद को प्राथमिकता देने लगा है जो परंपरागत सामाजिक नियंत्रण सामूहिक निर्णय के विपरीत है। इस स्वायत्तता ने जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया तो वहीं विवाह-परिवार की स्थिरता को भी चुनौती दी क्योंकि सामाजिक स्वीकृति की कमी तथा पारिवारिक असहमति कई बार रिश्तों में तनाव का कारण बनी। व्यक्तिवाद-उपभोक्तावाद का प्रसार भी आधुनिकता की ही देन है जिसने रिश्तों की धारणा को बदल दिया। अब रिश्तों को भी एक प्रकार के उपभोक्तावादी वस्तु के रूप में देखने की प्रवृत्ति विकसित हुई है जहाँ संतुष्टि एवं आनंद की पूर्ति के आधार पर ही रिश्तों को बनाए रखने अथवा तोड़ने का निर्णय लिया जाता है। इस उपभोक्तावादी दृष्टिकोण ने वैवाहिक स्थिरता को और कमजोर किया तथा रिश्तों की नाजुकता को बढ़ाया। डिजिटल युग ने इन परिवर्तनों को और गहराई प्रदान की है जैसे कि सोशल मीडिया, मोबाइल संस्कृति और वर्चुअल रिश्तों ने विवाह एवं परिवार के स्वरूप को पूरी तरह प्रभावित किया है। फेसबुक, इंस्टाग्राम, टिंडर, बम्बल, टैगो जैसे प्लेटफार्मों ने नई तरह की मुलाकातों एवं अंतरंगता को जन्म दिया है परंतु इन रिश्तों की अस्थिरता तथा सतहीपन ने भावनात्मक जुड़ाव को कमजोर किया है (टर्कल, 2011)। ऑनलाइन डेटिंग तथा वर्चुअल संवाद ने रिश्तों को तेजी से जोड़ने और उतनी ही जल्दी तोड़ने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है जिससे विवाहेतर आकर्षण एवं अस्थायी संबंधों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। डिजिटल संस्कृति ने विवाह-परिवार में पारदर्शिता और विश्वास की नई चुनौतियाँ खड़ी कीं; निरंतर कनेक्टिविटी, निजीपन का अभाव तथा वर्चुअल दुनिया की लत ने दांपत्य जीवन में असुरक्षा एवं तनाव को जन्म दिया। इन परिवर्तनों के बीच विवाहेतर संबंध आधुनिक समाज की सबसे चर्चित-विवादित प्रवृत्तियों में से एक बन गए हैं। पारंपरिक समाज में विवाहेतर संबंधों को सामाजिक अपमान, पाप आदि माना जाता था परंतु आधुनिकता, शहरी जीवन, डिजिटल प्लेटफार्म, उपभोक्तावादी संस्कृति ने इन्हें नया आयाम

दिया है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो विवाहेतर संबंधों के कई सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक कारण हो सकते हैं यथा दांपत्य जीवन में असंतोष, भावनात्मक दूरी, आर्थिक स्वतंत्रता, डिजिटल अवसर और विवाह संस्था की घटती पवित्रता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो यह आत्मीयता एवं आत्म-अभिव्यक्ति की तलाश का परिणाम हो सकता है, वहीं सामाजिक दृष्टि से यह वैवाहिक स्थिरता तथा पारिवारिक एकता हेतु गंभीर चुनौती प्रस्तुत करता है। विवाहेतर संबंध अक्सर दांपत्य जीवन में विश्वास और भावनात्मक बंधन को तोड़ते हैं जिससे परिवार में असुरक्षा, अविश्वास कभी-कभी टूटन (तलाक या अलगाव) की स्थिति उत्पन्न होती है। नवीन प्राप्त आर्थिक स्वतंत्रता तथा शहरी जीवनशैली ने इस प्रवृत्ति को और गति दी है क्योंकि इसमें व्यक्ति के पास अब अधिक अवसर एवं संसाधन उपलब्ध हैं। इस प्रकार आधुनिकता ने भारतीय विवाह एवं परिवार की परंपरागत स्थिरता को गहनता से प्रभावित किया है।

स्नेह का अलगाव तथा भावनात्मक संकट

भारतीय समाज में विवाह-परिवार जैसी संस्थाएँ ऐतिहासिक रूप से स्थिर तथा आत्मीयता पर आधारित मानी जाती रही हैं किन्तु आधुनिकता और सामाजिक परिवर्तन की लहरों ने इन संस्थाओं के भीतर स्नेह एवं आत्मीयता को गहराई से प्रभावित किया है जिसके परिणामस्वरूप आज विवाह एवं परिवार में स्नेह का क्षरण एक स्पष्ट सामाजिक यथार्थ बन चुका है। समाज में तलाक तथा वैवाहिक संबंधों में अस्थिरता में घटित वृद्धि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है; जहाँ परंपरागत समाज में तलाक को सामाजिक कलंक माना जाता था तो वहीं आज शहरी और शिक्षित वर्ग में यह एक स्वीकार्य विकल्प बन चुका है क्योंकि पति-पत्नी के बीच भावनात्मक सामंजस्य तथा विश्वास की कमी रिश्तों को कमजोर कर रही है। विवाहेतर संबंध इस क्षरण का सबसे गहरा आयाम प्रस्तुत करते हैं जो दांपत्य जीवन में विश्वास-आत्मीयता को चुनौती देते हैं। वैश्वीकरण-नगरीकरण के फलस्वरूप विस्तृत होती डिजिटल संस्कृति, आर्थिक स्वतंत्रता तथा व्यक्तिगत स्वायत्तता ने विवाहेतर संबंधों की संभावनाओं को बढ़ाया है जिसके चलते विवाह संस्था का पवित्र एवं स्थायी स्वरूप अस्थिरता की ओर बढ़ रहा है। विवाहेतर संबंध व्यक्तिगत नैतिक विचलन मात्र नहीं अपितु सामाजिक संरचनाओं में आए परिवर्तन का भी संकेत है क्योंकि उपभोक्तावादी संस्कृति में रिश्तों को भी उपभोग्य वस्तु की तरह ही देखा जाने लगा है। परिणामतः वैवाहिक असुरक्षा और संबंधों में भावनात्मक अविश्वास का संकट बढ़ रहा है जो स्नेह के अलगाव का सबसे तीखा रूप है। स्नेह के अलगाव का प्रभाव केवल पति-पत्नी तक सीमित नहीं है बल्कि पूरे पारिवारिक ढाँचे पर पड़ता है। इसके कारण पैदा हुई वृद्धों की उपेक्षा आधुनिक परिवार का एक गंभीर संकट है; संयुक्त परिवार प्रणाली में वृद्धों को सम्मान और सहारा मिलता था लेकिन एकल परिवारों एवं शहरी जीवनशैली ने उन्हें भावनात्मक-सामाजिक रूप से अलग-थलग कर दिया है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप प्राप्त आर्थिक स्वतंत्रता एवं शहरी जीवनशैली कि व्यक्तिगत व्यस्तताओं ने पीढ़ीगत अंतराल को और बढ़ाया जिसके कारण वृद्ध असुरक्षा, अकेलेपन और हाशियाकरण का शिकार होते हैं। इसी तरह युवाओं में रिश्तों के प्रति अस्थिरता तथा भावनात्मक तनाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अब अचानक प्रेम संबंधों का टूटना, डिजिटल रिश्तों की अस्थायीता तथा रोजगार-शिक्षा का दबाव युवाओं को रिश्तों में गंभीरता से निवेश करने से रोकता है परिणामस्वरूप वे या तो सतही रिश्तों में उलझे रहते हैं अथवा भावनात्मक रूप से असुरक्षित महसूस करते हैं। यह प्रवृत्ति युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव डालती है। व्यक्तियों में अकेलापन, अवसाद और चिंता जैसे मनोवैज्ञानिक संकट आज भारतीय शहरी समाज में तेजी से बढ़ रहे हैं जो विवाह और परिवार में स्नेह के अलगाव से गहराई से जुड़े हैं। वैश्विक परिप्रेक्ष्य से देखें तो पश्चिमी समाजों में विवाह-परिवार की अस्थिरता पहले से ही व्यापक थी जहाँ तलाक, सहजीवन एवं विवाहेतर संबंध अपेक्षाकृत सामान्य तथा सामाजिक रूप से स्वीकृत हैं। इसके विपरीत भारतीय समाज लंबे समय तक विवाह-परिवार की स्थिरता एवं स्नेहपूर्णता के लिए जाना जाता रहा परंतु आज भारत भी उसी दिशा में बढ़ रहा है। यद्यपि भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में अब भी परिवार को पवित्र माना जाता है एवं

विवाह को धार्मिक-सांस्कृतिक आधार प्राप्त है तथापि आधुनिकता-परंपरा के द्वंद्व ने इस पवित्रता को चुनौती दी है। एक तरफ परंपरागत मूल्य अभी भी रिश्तों की स्थिरता और सामूहिकता पर बल देते हैं तो वहीं दूसरी तरफ आधुनिक जीवनशैली व्यक्तिवाद तथा आत्म-संतुष्टि को बढ़ावा देती है जिसके कारण विवाह-परिवार में भावनात्मक संकट गहराता जा रहा है। इस द्वंद्व का परिणाम यह है कि व्यक्ति परंपरा एवं आधुनिकता के बीच झूलता हुआ न तो पूर्णतः सामूहिक जीवन का हिस्सा बन पाता है और न ही पूरी तरह स्वतंत्र आत्मकेंद्रित होकर संतोष ही प्राप्त कर पाता है। अतः स्पष्ट है कि स्नेह का अलगाव वर्तमान भारतीय समाज में केवल एक भावनात्मक समस्या नहीं बल्कि एक बहुआयामी सामाजिक संकट का स्वरूप ले चुका है जिसमें तलाक, विवाहेतर संबंध, वृद्धों की उपेक्षा, युवाओं की असुरक्षा, मानसिक स्वास्थ्य की चुनौतियाँ सम्मिलित हैं। यह संकट भारतीय परिवार तथा विवाह संस्था की स्थिरता को चुनौती देता है और इसके साथ ही सांस्कृतिक परंपराओं तथा आधुनिक जीवनशैली के बीच मौजूद गहरे द्वंद्व को भी उजागर करता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह स्थिति दुर्खीम की Anomie, मार्क्स की Alienation, वेबर की Rationalization और बॉमन की Liquid Love जैसी अवधारणाओं से गहराई से मेल खाती है जो यह स्पष्ट करती हैं कि स्नेह का अलगाव केवल व्यक्तिगत या नैतिक संकट नहीं अपितु सामाजिक संरचनाओं में आए गहरे परिवर्तनों का परिणाम है।

समाधान एवं संभावनाएँ

भारतीय समाज में विवाह, परिवार तथा स्नेह के अलगाव से उत्पन्न संकट के समाधान हेतु परंपरा-आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करना सबसे आवश्यक कदम है क्योंकि एक तरफ जहाँ परंपरागत मूल्य स्थिरता, सामूहिकता के साथ ही नैतिक नियंत्रण प्रदान करते हैं तो वहीं दूसरी तरफ आधुनिकता स्वतंत्रता, समानता और आत्म-अभिव्यक्ति की संभावनाएँ खोलती है; अतः आवश्यकता इस बात की है कि दोनों के बीच सामंजस्यपूर्ण संतुलन विकसित किया जाए। इस सबके साथ ही पारिवारिक मूल्यों का पुनर्संरक्षण भी अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसमें संयुक्त परिवार की सहयोगात्मक भावना को एकल परिवारों की स्वतंत्रता के साथ जोड़ा जा सकता है जिससे कि रिश्तों में भावनात्मक स्थिरता तथा सामाजिक सुरक्षा दोनों बनी रहें। विवाहेतर संबंधों से निपटने हेतु सामाजिक-मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रयास आवश्यक हैं; एक तरफ समाज में नैतिक संवाद तथा वैवाहिक परामर्श को प्रोत्साहित करना होगा, वहीं दूसरी तरफ दांपत्य जीवन में आपसी संवाद, विश्वास तथा आत्मीयता बढ़ाने हेतु मनोवैज्ञानिक सेवाओं की उपलब्धता भी सुनिश्चित की जानी चाहिए। इस हेतु शिक्षा और संवाद की भूमिका भी केंद्रीय है; साथ ही विद्यालय-विश्वविद्यालय स्तर पर भावनात्मक शिक्षा, लैंगिक समानता एवं स्वस्थ रिश्तों की समझ विकसित की जानी चाहिए जिससे कि नई युवा पीढ़ी रिश्तों को केवल उपभोग्य वस्तु न मानकर जिम्मेदारी और साझेदारी की दृष्टि से देखे। डिजिटल साक्षरता के साथ भावनात्मक समझ भी होना वर्तमान में अपरिहार्य है; सोशल मीडिया और वर्चुअल रिश्तों के युग में युवाओं और परिवारों को यह सिखाना होगा कि डिजिटल प्लेटफार्म अवसर के साथ जोखिम भी लाते हैं इसलिए भावनात्मक प्रबंधन एवं गोपनीयता पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। नीतिगत स्तर पर विवाह परामर्श केंद्रों का विस्तार, पारिवारिक कानूनों का सरलीकरण, सामाजिक जागरूकता अभियान चलाना आवश्यक है ताकि रिश्तों में पारदर्शिता एवं सहयोग को प्रोत्साहित किया जा सके। अंततः भारतीय संस्कृति से मिलने वाले सामूहिकता एवं स्नेह के मूल्य इस संकट का दीर्घकालिक समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं यथा वृद्धों का सम्मान, सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया, धार्मिक-सांस्कृतिक आधार पर रिश्तों को स्थिर मानना जो समाज को भावनात्मक संतुलन एवं स्थायित्व प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार परंपरा एवं आधुनिकता के बीच संतुलन, पारिवारिक मूल्यों का पुनर्संरक्षण, शिक्षा और संवाद का विस्तार, डिजिटल साक्षरता का विकास तथा सांस्कृतिक मूल्यों की पुनः स्थापना भारतीय समाज को विवाह तथा परिवार में स्नेह के अलगाव से उबरने एवं एक अधिक स्थिर, आत्मीय और संतुलित सामाजिक जीवन की ओर अग्रसर करने में सहायक हो सकती है।

निष्कर्ष

इस आलेख में प्रस्तुत विमर्श के पुनरावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में विवाह, परिवार, स्नेह का अलगाव केवल व्यक्तिगत संबंधों का संकट नहीं अपितु गहरी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का परिणाम है। परंपरागत संदर्भ में जहाँ संयुक्त परिवार प्रणाली, विवाह संस्था का धार्मिक-सांस्कृतिक स्वरूप तथा जाति-धर्म आधारित नियंत्रण ने आत्मीयता, सामूहिकता, स्थिरता आदि को बनाए रखा तो वहीं आधुनिकता की लहर ने इन मूल्यों को गहराई से प्रभावित किया। औद्योगीकरण, शहरीकरण, शिक्षा के विस्तार के साथ घटित वैश्वीकरण ने व्यक्तियों को नए अवसर और स्वतंत्रता प्रदान की किन्तु इसके साथ ही एकल परिवार प्रणाली, वैवाहिक स्वायत्तता के साथ ही व्यक्तिगत आकांक्षाएँ भी उभरकर सामने आईं। महिलाओं की शिक्षा और रोजगार में सुधार ने लैंगिक भूमिकाओं को पुनर्परिभाषित किया जिससे विवाह-परिवार में साझेदारी का नया आयाम जुड़ा परंतु इसके साथ ही पारंपरिक मानदंडों की कमजोर पड़ती पकड़ ने रिश्तों की स्थिरता को चुनौती दी। शहरीकरण-वैश्वीकरण के प्रभाव ने प्रेम विवाह, अंतर्जातीय विवाह तथा वैवाहिक स्वायत्तता ने सामाजिक नियंत्रण को कमजोर किया जिससे रिश्तों की स्थिरता भावनात्मक पूर्ति पर आधारित हो गई। इस संदर्भ में व्यक्तिवाद आधारित उपभोक्तावाद ने रिश्तों को उपभोग्य वस्तु की तरह देखना शुरू किया जबकि डिजिटल युग ने सोशल मीडिया, मोबाइल संस्कृति तथा वर्चुअल रिश्तों के माध्यम से आत्मीयता की अस्थिरता को और गहरा कर दिया। इस सबके कारण विवाह-परिवार में स्नेह के क्षरण के परिणामस्वरूप तलाक, अलगाव, वैवाहिक अस्थिरता आदि की संख्या बढ़ रही है। समाज में बढ़ते विवाहेतर संबंधों ने आपसी विश्वास एवं आत्मीयता को गहरा आघात पहुँचाया है जिससे दांपत्य जीवन असुरक्षित तथा परिवार विघटित हो रहे हैं। वृद्धों की उपेक्षा और युवाओं में भावनात्मक अस्थिरता आधुनिक पारिवारिक जीवन की बड़ी चुनौतियाँ बन चुकी हैं। लोगों के मानसिक स्वास्थ्य पर इसका गहरा असर दिखाई देता है जहाँ अकेलापन, अवसाद और तनाव बढ़ रहा है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य से तुलना करें तो पश्चिमी समाज पहले ही इस अस्थिरता का अनुभव कर चुका है किन्तु भारतीय समाज जो अब तक विवाह-परिवार की स्थिरता के लिए जाना जाता था आज उसी राह पर अग्रसर है। यह परिवर्तन भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में परंपरा एवं आधुनिकता के द्वंद्व का प्रतीक है जहाँ एक तरफ सामूहिकता और नैतिकता के मूल्य अब भी जीवित हैं, वहीं दूसरी ओर आधुनिक जीवनशैली व्यक्तिवाद एवं आत्म-संतुष्टि पर बल देती है। समाजशास्त्रीय सिद्धांत इस परिघटना को समझने में गहरा योगदान देते हैं। दुर्खीम की Anomie सामाजिक नियंत्रण के विघटन को स्पष्ट करती है, मार्क्स की Alienation पूँजीवादी व्यवस्था में रिश्तों के वस्तुकरण को रेखांकित करती है, वेबर की Rationalization रिश्तों की औपचारिकता तथा मोहभंग को समझाती है, फ्रॉम की The Art of Loving प्रेम एवं स्नेह के बाजारकरण की आलोचना करती है, गिडेन्स की Pure Relationship विलंबित आधुनिक रिश्तों की सशर्तता और नाजुकता को परिभाषित करती है, जबकि बॉमन की Liquid Love आधुनिक रिश्तों की तरलता और अस्थिरता का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। भारतीय समाजशास्त्रियों यथा एम.एन. श्रीनिवास, आंद्रे बेते, कर्वे और शाह ने भारतीय संदर्भ में विवाह-परिवार की जटिलताओं को उजागर किया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्नेह का अलगाव पश्चिम से आयातित परिघटना मात्र नहीं अपितु भारतीय सामाजिक संक्रमण का भी परिणाम है। अंतिम चिंतन यही है कि विवाह एवं परिवार में स्नेह का अलगाव भावनात्मक संकट की ओर ले जा रहा है जिसे हल करने हेतु परिवार और समाज का पुनराविष्कार आवश्यक है। जिस हेतु परंपरा-आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करना, पारिवारिक मूल्यों का पुनर्संरक्षण करना, विवाहेतर संबंधों से निपटने के लिए सामाजिक-मनोवैज्ञानिक उपाय अपनाना, शिक्षा और संवाद के माध्यम से युवाओं को स्वस्थ रिश्तों की समझ देना, डिजिटल साक्षरता और भावनात्मक प्रबंधन को बढ़ावा देना तथा सांस्कृतिक मूल्यों की पुनःस्थापना करना आवश्यक है क्योंकि केवल तभी विवाह और परिवार जैसी संस्थाएँ फिर से आत्मीयता, स्थिरता और सहयोग की धुरी बन सकती हैं। स्नेह को पुनर्जीवित करना न केवल व्यक्तिगत संतोष का प्रश्न है अपितु समाज की स्थिरता और

सांस्कृतिक निरंतरता का भी आधार है। इस प्रकार भावनात्मक संकट को दूर करने हेतु परिवार और समाज का पुनराविष्कार ही भविष्य का सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार है।

संदर्भ

1. अहमद, आई. (1976). फैमिली, किनशिप एंड मैरिज अमंग मुस्लिम्स इन इंडिया. मनोहर.
2. बॉमन, जेड. (2003). लिक्विड लव: ऑन द फ्रेल्टी ऑफ ह्यूमन बॉन्ड्स. पॉलिटी.
3. बॉमन, जेड. (2007). लिक्विड फीयर. पॉलिटी.
4. बेक, यू., एवं बेक-गर्न्सहाइम, ई. (2002). इंडिविजुअलाइजेशन: इंस्टिट्यूशनलाइज्ड इंडिविजुअलिज्म एंड इट्स सोशल एंड पॉलिटिकल कॉन्सीक्वेंसेस. सेज.
5. बेते, ए. (1965). कास्ट, क्लास, एंड पावर: चेंजिंग पैटर्न्स ऑफ स्ट्रैटिफिकेशन इन ए तंजोर विलेज. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.
6. बेसनार्ड, पी. (1987). एनॉमी: हिस्ट्री एंड मीनिंग्स. पॉलिटी.
7. कर्वे, आई. (1965). किनशिप ऑर्गनाइजेशन इन इंडिया. एशिया पब्लिशिंग हाउस.
8. देसाई, आई. पी. (1964). सम एस्पेक्ट्स ऑफ फैमिली इन महुवा: ए सोशियोलॉजिकल स्टडी इन एन इंडस्ट्रियल टाउन इन ट्रांजिशन. एशिया पब्लिशिंग हाउस.
9. ड्यूमों, एल. (1980). होमो हायार्किक्स: द कास्ट सिस्टम एंड इट्स इम्प्लीकेशन्स. यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.
10. दुर्खीम, ई. (1951). सुसाइड: ए स्टडी इन सोशियोलॉजी (जे. ए. स्पॉलिंग एवं जी. सिम्पसन, अनुवाद). फ्री प्रेस. (मूल कार्य 1897 में प्रकाशित)
11. फ्रॉम, ई. (1941). एस्केप फ्रॉम फ्रीडम. फरर एंड राइनहार्ट.
12. फ्रॉम, ई. (1956). द आर्ट ऑफ लविंग. हार्पर एंड रो.
13. गिडेन्स, ए. (1992). द ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ इंटिमेसी: सेक्सुअलिटी, लव एंड इरोटिसिज्म इन मॉडर्न सोसाइटीज. स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
14. इल्लौज, ई. (1997). कंज्यूमिंग द रोमांटिक यूटोपिया: लव एंड द कल्चरल कॉन्ट्राडिक्शन्स ऑफ कैपिटलिज्म. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.
15. इल्लौज, ई. (2007). कोल्ड इंटिमेसीज: द मेकिंग ऑफ इमोशनल कैपिटलिज्म. पॉलिटी.
16. इल्लौज, ई. (2012). व्हाई लव हर्ट्स: ए सोशियोलॉजिकल एक्सप्लेनेशन. पॉलिटी.
17. कपाडिया, के. एम. (1958). मैरिज एंड फैमिली इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
18. कर्वे, आई. (1965). किनशिप ऑर्गनाइजेशन इन इंडिया. एशिया पब्लिशिंग हाउस.
19. मैनडलबॉम, डी. जी. (1970). सोसाइटी इन इंडिया: कंटीन्यूटी एंड चेंज (खंड 1-2). यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.
20. मार्क्स, के. (1978). इकॉनॉमिक एंड फिलॉसॉफिकल मैनुस्क्रिप्ट्स ऑफ 1844. इन आर. सी. टकर (सम्पा.), द मार्क्स-एंगेल्स रीडर (द्वितीय संस्करण, पृ. 66-125). डब्ल्यू. डब्ल्यू. नॉर्टन. (मूल कार्य 1844 में प्रकाशित)
21. शाह, ए. एम. (1998). द फैमिली इन इंडिया: क्रिटिकल एसेज. ओरिएंट लॉंगमैन.
22. श्रीनिवास, एम. एन. (1966). सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.
23. ट्रॉटमैन, टी. आर. (1981). द्रविडियन किनशिप. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
24. टर्कल, एस. (2011). अलोन टुगेदर: व्हाई वी एक्सपेक्ट मोर फ्रॉम टेक्नोलॉजी एंड लेस फ्रॉम इच अदर. बेसिक बुक्स.

25. उबेरोई, पी. (2006). फ्रीडम एंड डेस्टिनी: जेंडर, फैमिली, एंड पॉपुलर कल्चर इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
26. वेबर, एम. (1978). इकोनॉमी एंड सोसाइटी: एन आउटलाइन ऑफ इंटरप्रेटिव सोशियोलॉजी (जी. रोथ एवं सी. विटिच, सम्पा.). यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस. (मूल कार्य 1922 में प्रकाशित)